एक लाख परमारों का उद्धार : बीसवीं सदी का एक ऐतिहासिक कार्य

□ मुनि नवीनचन्द्र विजयजी

इस कालचक्र के प्रारंभ में जब प्रथम तीर्थंकर भगवान श्रीऋषभदेव का अवतरण हुआ तब उनके पिता नाभिराय ने संसार की व्यवस्था का भार ऋषभदेव के कंधों पर डाला।

उन्होंने इस व्यवस्था के क्रम में सर्वप्रथम तीन-तीन वर्णों की स्थाना की क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती ने व्रतधारी श्रावकों के चौथे वर्ण की स्थापना की जो कालान्तर में ब्राह्मण वर्ण के रूप में ख्यात हुआ।

इस वर्ण-व्यवस्था को आज हम जिस विकृतावस्था में देख रहे हैं वैसी उस समय नहीं थी।

क्षत्रिय वंश की श्रेष्ठता

जैन धर्म की मान्यता के अनुसार सबसे श्रेष्ठ वर्ण क्षत्रिय है। चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेव क्षत्रिय होते हैं। जैन धर्म को क्षत्रियों का धर्म कहा जाता है। क्षत्रियों के द्वारा ही इस धर्म का प्रसार और संवर्धन हुआ है। भगवान महावीर स्वामी जब देवानंद ब्राह्मणी की कुक्षि में अवतरित हुए तो इन्द्र ने सोचा कि ऐसा न हुआ है न होगा। तीर्थंकर का जीव केवल क्षत्रिय कुल में ही उत्पन्न होता है। यह सोचकर इन्द्र ने भगवान महावीर के पौद्गलिक शरीर को ब्राह्मणी की कुक्षि से लेकर त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में स्थापित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया। इस तरह जैन धर्म ने क्षत्रियवंश को श्रेष्ठ स्वीकार किया है।

परमार क्षत्रिय वंश की प्राचीनता

भगवान मुनिसुव्रत स्वामी के बाद इक्ष्वाकु वंश क्षत्रियों की अनेक शाखा-प्रशाखाओं में विभाजित हो गया। भगवान नेमिनाथ यदुवंश में उत्पन्न हुए। भगवान महावीर स्वामी ज्ञातृंश में उत्पन्न हुए। भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के बाद ज्ञातृवंश भी अनेक शाखा-प्रशाखाओं में विभाजित हो गया। जिनमें परमार, सोलंकी, सिसोदिया, राठौड़ आदि प्रमुख हैं। हिन्दू साहित्यकार और इतिहासज्ञ जयशंकर प्रसाद मानते हैं कि परमार, परिहार, चालुक्य या सोलंकी और चौहान वंश की उत्पत्ति आबू में अग्निकुल से हुई थी। आबू और उसके आसपास परमार क्षत्रियों का राज्य था। सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरी चन्द्रावती उनकी प्रमुख राजधानी थी। उसके बाद किन्हीं अपरिहार्य कारणों से परमार और सोलंकी आदि वंशों को आबू और चन्द्रावती नगरी छोड़कर गुजरात और मध्यप्रदेश में आना पड़ा। सोलंकी वंश गुजरात में पाटण के आसपास बस गया और परमार वंश मध्यप्रदेश के उज्जयिनी के आसपास बस गया।

परमार क्षत्रियों की वीरता

क्षत्रियों की अनुपम वीरता के कारण क्षत्रियत्व वीरत्व का पर्यायवाची बन गया और जो वीर होता है वही स्वामी बनता है। कहा भी जाता है 'वीरभोग्या वसुंधरा' भारत वर्ष में सभी लोगों के कार्य विभाजित थे। क्षत्रियों का कार्य देश की रक्षा और उसकी समृद्धि बढ़ाना था और यही उनका कर्तव्य भी। परमार क्षत्रियों ने भी अपने इस कर्तव्य का भलीभाँति निर्वहण किया। आबू से उज्जयिनी में बसने के बाद परमारों ने अपने भुजबल से सम्पूर्ण मध्यप्रदेश को अधीन बना लिया। उस समय मध्यप्रदेश की सीमाएं बड़ौदे से लेकर चम्बल घाटी तक थीं। परमारों ने अपनी राजधानी उज्जयिनी को बनाया। परमार राजा अद्वितीय वीर, न्यायप्रिय, साहित्य एवं कला के रसिक थे। परमार सम्राटों में विक्रमादित्य न्याय के लिए, मुंज वीरता के लिए और महाराजा भोज विद्या के लिए प्रसिद्ध थे। महाराजा भोजन ने 'सरस्वती कंठाभरण' नाम का ग्रंथ भी लिखा था। इसी से प्रेरणा लेकर हेमचन्द्राचार्य ने 'सिद्ध हेम व्याकरण' की रचना की थी। सोलंकी वंश में सिद्धराज जयसिंह और परमार्हत् महाराजा कुमारपाल हुए उसी प्रकार परमार वंश में विक्रमादित्य, मुंज और भोज हुए।

परमार क्षत्रिय और जैन धर्म

महाराजा भोज के दरबार में महाकवि कालिदास की तरह एक प्रतिभाशाली कवि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनपाल का भी उच्च स्थान था। महाकवि धनपाल जैन थे और उन्होंने 'तिलक मंजरी' नाम का गद्य काव्य लिखा है, जिसमें विनिता नगरी और भगवान आदिनाथ की महिमा वर्णित है। यह संस्कृत साहित्य की एक महान और अद्वितीय कृति है।

धनपाल कवि की चमत्कारिक काव्यप्रतिभा एवं निर्भीकता से राजा भोजन अत्यन्त प्रभावित थे। अन्य राजाओं की भांति वह भी शिकार प्रेमी थे। एक बार कवि धनपाल ने राजा भोज के बाण से घायल हिरणी की व्यथा का मार्मिक वर्णन सुनाया। जिसे सुनकर राजा का हृदय करुणार्द्र हो उठा और मूक प्राणियों के लिए उनके मन में करुणा फूट पड़ी। तब से राजा भोज ने सदा के लिए शिकार खेलना छोड़ दिया।

महाराजा भोज के उत्तराधिकारी लघुभोज हुए। उन्होंने 'जीवविचार' के रचयिता श्रीशांतिसूरि को 'वादिवेताल' की पदवी से विभूषित किया था। कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने जैसे सोलंकी कुमारपाल को परमार्हंत बनाया था वैसे ही वादिवेताल श्रीशांतिसूरि ने परमार लघुभोज को जैन धर्म का अनन्य रशंसक बनाया था।

परमार क्षत्रिय वंश की व्यापकता

एक दोहा प्रचलित था :—

प्रथम साख परमार, सेस सीसौदा सिंगाला।
रणथंभा राठौड, वंस चंवाल बचाला॥

कवि ने दोहे की प्रथम पंक्ति में परमार क्षत्रियों की साख, प्रभुत्व, अधिकार और व्यापकता को स्वीकार किया है। एक समय था जब सम्पूर्ण भारत में परमार क्षत्रिय वंश की बोलबाला थी। परमार लघुभोज की मृत्यु और वादिवेताल श्रीशांतिसूरि के स्वर्गवास के बाद परमारों का जैन धर्म से परिचय सिमट गया। परमार क्षत्रियों में परस्पर जो एकता थी वह भी टूट गई। इसलिए वंश विभक्त हो गया और बिना माली की जो दशा चमन की होती है वही दशा परमार क्षत्रियों की हुई।

जो परमार क्षत्रिय मध्य प्रदेश की सीमान्त में बसे हुए थे उनका उज्जयिनी से सम्पर्क टूट गया और वे अपने में ही सिकुड़ते चले गए। यद्यपि जैन धर्म का सम्पर्क उनसे टूट गया था फिर भी उसके जो मौलिक संस्कार थे वे उननमें जीवित रहे। उन्होंने अपने छोटे-छोटे राज्य बनाएं। देवगढ़ उनकी मुख्य राजधानी थी। शेष परमार क्षत्रिय दो सौ कि. मी. के अन्दर में सात सौ गांवों में विभक्त हो कर बसे हुए थे। स्वतंत्रता के बाद वे गांव दो जिलों में विभाजित हो गए और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके छोटे-छोटे राज्यों का भारत में विलीनीकरण हो गया। राज्य चले जाने के बाद उन्होंने अपना व्यवसाय कृषि को चुना। वे पूर्णतया शाकाहारी हैं। उनका जीवन सरलता, सौम्यता, मानवता एवं निष्कपटता से सभर है। वे निर्भीक और परिश्रमी हैं। स्वाभिमान की भावना भी उनमें उत्कट है। वे न किसी के आगे हाथ पसारते हैं न अपना अपमान किसी तरह सह सकते हैं।

परमार क्षत्रियों का धर्मप्रेम

परमार क्षत्रिय स्वभावतः शूरवीर, निडर, परिश्रमी, सरलात्मा और धार्मिक प्रवृत्ति के लोग हैं। मध्यप्रदेश और गुजरात की सीमान्त में रहने के कारण दोनों संस्कृतियों का समन्वय उनमें मिलता है। महाराजा विक्रमादित्य, मुंज और भोज की वीरता का रक्त उनकी नसों में बहता है और कलिकाल-सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य एवं महाराज कुमारपाल द्वारा प्रवर्तित अहिंसा का घोष भी उनके कणों में गूंजता है।

बोडेली जिला बडौदा के आसपास परमार क्षत्रियों के गांव हैं। बोडेली उनका व्यापारिक केन्द्र है। यहां ई. सन् १९१५ के लगभग सुश्रावक सोमचन्द्र भाई केशवलाल की दुकान थी। वे जैन धर्म का विधिवत पालन करते थे। परमार क्षत्रिय भाई अपनी जीवनावश्यक चीजें खरीदने के लिए सोमचन्द्र भाई की दुकान पर आते-जाते रहते थे। वे उनकी सरलता, निष्कपटता एवं धार्मिक जिज्ञासा से प्रभावित हुए। उन्होंने सोचा यदि इन लोगों को जैन धर्म की महिमा बतायी जाए तो अवश्य शुभ परिणाम आ सकता है।

एक दिन उन्होंने सालपुरा गांव के सीताभाई नाम के व्यक्ति से जो उनके अन्तरंग मित्र भी थे जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों की चर्चा की। वे जैन धर्म से बहुत प्रभावित हुए और स्वयं जिन शासन को समर्पित हो गए। सीताभाई ने जैन धर्म की महानता अपने अन्य परमार क्षत्रिय भाईयों को बताई और वे जैन होते गए। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि परमार क्षत्रिय कितने धर्म प्रेमी और जिज्ञासु थे। उनमें अहिंसा, सत्य, दया, प्रेम और मैत्री की बीज पहले से ही पड़े हुए थे। केवल उन्हें संवर्धित करने की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता को सोमचन्द्रभाई ने समझा और पूरी की।

परमार क्षत्रियवंश के आद्य जैन दीक्षित

सोमचन्द्रभाई ने जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों का प्रचार चालू रखा और उनसे प्रभावित होकर सालपुरा, डुमां, झांपा और सानतलावड़ा आदि गांवों के कुछ परिवारों ने जैन धर्म को स्वीकार किया और इस तरह परमार क्षत्रिय जैनों की संख्या दो सौ अस्सी हो गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन दो सौ अस्सी भाइयों ने सालपुरा के रणछोड़भाई गोपालदास नाम के सद्गृहस्थ भी थे। उनकी पत्नी का नाम बालूबहन था। उनके घर ई. सन् १९२३ में एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ। जिनका नाम उन्होंने मोहनकुमार रखा।

कुमार मोहन ने प्रारम्भिक अक्षरज्ञान गांव की छोटी सी स्कूल में प्राप्त किया। ग्यारह वर्ष की अवस्था में वे सालपुरा से बाईस कि. मी. दूर डभोई में पंन्यास श्रीरंगविजयजी महाराज के पास चले गए। वहाँ उन्होंने जैन धर्म का प्राथमिक ज्ञान प्राप्त किया।

ई. सन् १९३६ में पंन्यास श्रीरंग बिजयजी की प्रेरणा से बोडेली में परमार क्षत्रिय भाईयों के बच्चों के लिए 'कुमार छात्रालय' की स्थापना की गई। कुमार मोहन डभोई से बोडेली आ गए। यहां वे धार्मिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने लगे। जब कुमार मोहन दस वर्ष के थे उस समय उनके माता-पिता की मृत्यु हो गई थी। अपनी उम्र के सत्रह वर्ष तक वे बोडेली छात्रालय में पढ़ते रहे।

कुमार मोहन के हृदय में बचपन से ही वैराग्य के बीज पड़ गए थे। वे बीज अब अंकुरित होकर पुष्पित और पल्लवित हो गए थे। उन्होंने अपने चाचा सीताभाई से कहा- "मैं सांसारिक मोहजाल में फँसनना नहीं चाहता। में दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करना चाहता हूँ।"

यद्यपि उनके चाचा नहीं चाहते थे कि मोहन दीक्षा ले; पर कुमार मोहन के दृढ़ निर्णय के आगे वे झुक गए। न चाहते हुए भी उन्होंने कुमार मोहन को भारी मन से आंखों से आंसू लिए दीक्षा के लिए विदा किया।

सत्रह वर्षीय कुमार मोहन दीक्षाग्रहण के लिए नरसंडा (गुजरात) में बिराजित मुनि श्री विनय विजयजी महाराज के चरणों में उपस्थित हुए। मुनि श्री विनय विजयजी से कुमार मोहन का परिचय बोडेली में ही हो गया था जब मुनि श्री विनय विजयजी जीवनलालजी के नाम से बोडेली में जैन धर्म का रचार का कार्य कर रहे थे।

मुनि श्री विनय विजयजी कुमार मोहन को अच्छी तरह जानते थे। उनकी विनय, नम्रता, सरलता, वैराग्य और अध्यवसाय से पूर्णतया अवगत थे। अत: उन्होंने कुमार मोहन की योग्यता औ पात्रता देखकर ई. सन् १९४१ में नरसंडा गांव में दीक्षा दे दी। उनका नया नाम रखा गया मुनि श्री इन्द्र विजयजी महाराज। वे परमार क्षत्रिय वंश के आद्य जैन दीक्षित हुए।

मुनि इन्द्र विजय का संकल्प

मुनि श्री इन्द्र विजयजी का गहन अध्ययन उनके गुरु मुनि श्री विनय विजयजी के पावन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेरक सान्निध्य और मार्गदर्शन में प्रारंभ हुआ।

गुजरात से विहार करते हुए वे राजस्थान में पधारे। यहां बीजोवा में उनके दादा गुरु महेन्द्र पंचांग के रचयिता आचार्य श्री विकास चन्द्रसूरिजी महाराज के करकमलों ससे सन् १९४५ में उनकी बड़ी दीक्षा सम्पन्न हुई।

अपनी दीक्षा के सात वर्ष के बाद वे सन् १९४८ में सादड़ी (राजस्थान) में बिराजित पंजाब केसरी, युगवीर आचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज की छत्रछाया में आ गए। यहीं से उनका वास्तविक विकास प्रारंभ हुआ। यहाँ उन्होंने संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। उन भाषाओं के साहित्य का अध्ययन किया। अपने गुरु के पास न रहकर अब वे आचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज की सेवा में ही रहने लगे। उनका पावन सानिध्य, स्नेह और वात्सल्य उन्हें नयी प्रेरणा देता था। उनके आचारों, विचारों, आदर्शों और कार्यों का मुनि श्री इन्द्र विजयजी के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। अपनी सूझबूझ, गुरुकृपा एवं योग्यता के बल पर वे शीघ्र ही विद्वान मुनिराज बन गए।

सन् १९५४ की आश्विन कृष्ण दशमी की रात्रि को पंजाब केसरी, युगवीर आचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वरजी महाराज का बम्बई में स्वर्गवास हो गया। समग्र जैन समाज शोक में डूब गया। उनके स्वर्गवास से जैन धर्म और समाज की अपूरणीय क्षति हुई जिसकी पूर्ति आज तक न हुई है, न होगी। वह दैदिप्यमान नक्षत्र जिसके दिव्य प्रकाश में मानव जाति अपना रास्ता खोजती थी, अंधकार में डूब गया।

मुनि श्री इन्द्र विजयजी महाराज ने योगोद्वहन किए। उनके पास एक मुमुक्षु ने दीक्षा अंगीकार की जिनका नाम मुनि ओंकार विजयजी रखा गया। वे शान्तमूर्ति आचार्य श्री समुद्र सूरीश्वरजी महाराज के साथ विहार कर बम्बई से सूरत पधारे। यहाँ उन्हें आचार्य श्री ने सन् १९५४ चैत्र कृष्णा तृतीया के दिन गणिपद से अलंकृत किया।

अब गणि श्री इन्द्र विजयजी महाराज स्वतंत्र रूप से कार्य करने में सक्षम हो गए थे। सर्वप्रथम उन्होंने अपने जन्मक्षेत्र में और परमार क्षत्रिय वंश में जैन धर्म के प्रचार का महान कार्य करने का संकल्प किया। इसके लिए उन्हें मुनि श्री जिनभद्र विजयजी पहले से ही प्रेरित कर चुके थे। धर्म के प्रचार का यह महान कार्य उन्हीं की राह देख रहा था। उन्होंने आचार्य श्री समुद्र सूरीश्वरजी महाराज के चरणों में मस्तक रखा, आशीर्वाद लिया और बड़ौदा जिले के बोड़ेली शहर में पहुंचे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमार क्षत्रियों का उद्धार

इस क्षेत्र में जैन धर्म के प्रचार का कार्य छोटे रूप में धीरे धीरे चल रहा था। इस प्रचार कार्य को व्यवस्थित करने के लिए पंन्यास श्रीरंग विजयजी की प्रेरणा से सन् १९३६ में बोड़ेली में 'श्रीपरमार क्षत्रिय जैन धर्म प्रचारक सभा' की स्थापना हुई थी।

जैन धर्म के इस प्रचार कार्य को अब बड़े स्तर पर और व्यापक रूप में करने की आवश्यकता थी। इस के लिए एक ऐसे कर्मठ साधु की आवश्यकता थी जो उनकी भाषा से रीति-रिवाजों से, मान्यताओं से और वहां की परिस्थितियों से भलीभांति परिचित हो। यह कितना सुनहरी संयोग था कि इधर उसी क्षेत्र के परमार क्षत्रिय वंश के प्रथम जैन साधु बने गणि श्री इन्द्र विजयजी इस प्रचार कार्य को आगे बढ़ाने के लिए बोड़ेली पधारे थे।

वह सन् १९५६ वां साल था। गणि श्री इन्द्र विजयजी इस प्रचार कार्य में तन-मन से जुट गए और फिर उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। केवल एक नहीं दो नहीं, तीन नहीं, पांच नहीं, दस नहीं, किन्तु बारह वर्षों तक इस क्षेत्र में घर-घर, गली-गली, गांव-गांव प्रचार करते हुए घूमते रहे। उनके मन में बस एक ही विश्वास था कि मैं कैसे अधिक से अधिक लोगों को जिन का अनुयायी बनाऊँ और उन्हें समकित की प्राप्ति कराऊँ। अपनी बुलन्द आवाज, ज्ञान गाम्भीर्य एवं समझाने की सरल शैली के कारण इस क्षेत्र में उनके प्रवचनों की धूम मची रही। इसाई मिशनरी, रामानंदी और स्वामीनारायण सम्प्रदाय के धर्मगुरु यहां पहले से ही अपने धर्म और मत के प्रचार कार्य में लगे हुए थे। जैसे ही गणि इन्द्र विजयजी इस क्षेत्र में आए वे उनके सामने टिक नहीं पाए।

गणि श्री इन्द्र विजयजी महाराज के बारह वर्षों के भगीरथ पुरुषार्थ के फलस्वरू इस क्षेत्र में एक लाख परमार क्षत्रिय भाई बहन (जिनमें पटेल भी सम्मलित है) नये जैन बने। ११५ मुमुक्षुओं ने दीक्षा अंगीकार की। ६० गांवों में जिन मंदिर बने और उतने ही गांवों में जैन धार्मिक पाठशालाएं खोली गई। अब गणि श्री इन्द्र विजयजी 'परमार क्षत्रियोद्धारक' कहलाने लगे।

शान्तमूर्ति आचार्य श्री विजय समुद्र सूरीश्वरजी महाराज ने उन्हें सन् १९७० में बसन्त पंचमी के दिन बरली, बम्बई में 'आचार्य पद' से विभूषित किया। गणि श्री इन्द्र विजयजी महाराज अब आचार्य श्री विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वरजी बन गए। सन् १९७७ में गुरु समुद्र ने उन्हें अपना पट्टधर घोषित किया। वर्तमान में संघ, समाज संचालन की महत् जिम्मेवारी को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भलीभाँति निभाते हुए वे अपने कार्यक्षेत्र को जैन धर्म में स्थिरता प्रदान करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील हैं। पावागढ़ तीर्थ का उद्धार और वहां जैन कन्या छात्रालय की स्थापना की प्रेरणा इस कार्य का प्रमुख चरण है।

परमार क्षत्रियोद्धारक, चारित्र चूड़ामणि, जैन दिवाकर आचार्य श्रीमद् विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वरजी महाराज की सबसे बड़ी देन और सबसे अधिक महान गौरवमय कार्य एक लाख परमार क्षत्रियों को जैन धर्म का अनुयायी बनाना है। जैन धर्म के पांच सौ वर्षों के इतिहास में ऐसा कार्य किसी आचार्य द्वारा नहीं हुआ है। एक लाख परमारों का उद्धार बीसवीं सदी का एक ऐतिहासिक कार्य है।

□

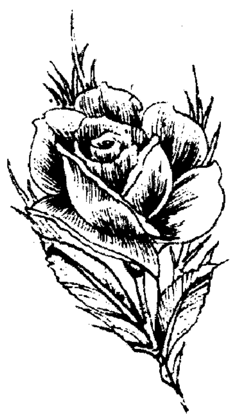

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org